I J C R M
International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

डॉ० शंकर शेष के नाटकों में चित्रित पात्रों दलित और स्त्री का सामाजिक आधार

धनंजय कुमार महतो [1]*, डॉ० मीरा कुमारी [2]
[1] शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत
[2] शोध निदर्शक, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

Corresponding Author: धनंजय कुमार महतो *

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.17012700

सारांश

हिंदी नाट्य साहित्य में डॉ. शंकर शेष एक ऐसे सशक्त नाटककार हैं जिन्होंने नाटक को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसे सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का दर्पण बनाया। उनके नाटकों में समाज के विभिन्न वर्गों—निम्नवर्ग, मध्यमवर्ग, उच्चवर्ग, दलित एवं स्त्रियाँ—की जीवन-स्थितियों और संघर्षों का यथार्थ चित्रण मिलता है। विशेषतः बाढ़ का पानी, पोस्टर, रक्तबीज और एक और द्रोणाचार्य जैसे नाटकों में जातिगत भेदभाव, शोषण, असमानता, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार और स्त्री-दमन जैसी समस्याएँ पात्रों के माध्यम से उद्घाटित होती हैं।

डॉ. शेष के दलित पात्र केवल पीड़ित या करुणा के पात्र न होकर प्रतिरोध और परिवर्तन के वाहक हैं। वे मंदिर प्रवेश, शिक्षा और सामाजिक पहचान के प्रश्नों को उठाकर दलित विमर्श को नया आयाम प्रदान करते हैं। वहीं स्त्री पात्र समाज की विसंगतियों, पारिवारिक दमन और अस्तित्व-संघर्ष को सामने लाते हैं, लेकिन साथ ही आत्मबल और संघर्ष-चेतना से युक्त होकर परिवर्तन की संभावना भी रचते हैं।

उनकी नाट्य दृष्टि यथार्थवादी होते हुए भी परिवर्तनकारी है। संवादों और पात्रों के संघर्षों के माध्यम से वे यह स्पष्ट करते हैं कि साहित्य और समाज अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। रत्नगर्भा जैसे नाटकों में प्रतीकात्मक ढंग से वर्ग-संघर्ष, सत्ता-लोलुपता और स्त्री-अस्मिता के प्रश्नों को उठाया गया है।

अतः डॉ. शंकर शेष का नाट्य साहित्य सामाजिक विषमताओं और वर्गीय अंतर्विरोधों का सशक्त दस्तावेज़ है। उनके नाटक दलित और स्त्री विमर्श के माध्यम से न केवल समाज की जटिलताओं को उजागर करते हैं, बल्कि समानता, संघर्ष, सहयोग और मानवीय संवेदना के आधार पर एक नए समाज की संभावना की ओर संकेत भी करते हैं।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 01-05-2025
- **Accepted:** 15-06-2025
- **Published:** 30-06-2025
- **IJCRM:**4(3); 2025: 582-589
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

महतो, धनंजय कुमार; कुमारी, मीरा. डॉ० शेष के नाटकों में चित्रित दलित एवं स्त्री पात्रों का सामाजिक आधार. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(3):582-589.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मुख्य शब्द: डॉ. शंकर शेष, हिंदी नाटक, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, अस्मिता, परिवर्तन, यथार्थवाद, नाट्य साहित्य

परिचय

हिंदी नाट्य साहित्य में डॉ. शंकर शेष का नाम उन रचनाकारों में अग्रगण्य है जिन्होंने रंगमंच को सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का सशक्त मंच बनाया। उनके नाटक जीवन के विविध पक्षों और समाज की जटिलताओं को उजागर करते हैं। शंकर शेष का मानना था कि नाटक का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज के अंतर्विरोधों को अभिव्यक्त करना और जनमानस में विचारों की हलचल उत्पन्न करना भी है। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने पात्रों को गढ़ा।शंकर शेष के नाटकों में चित्रित पात्र केवल मंचीय चरित्र नहीं हैं, बल्कि वे समाज की गहराइयों से जन्मे हुए जीवंत प्रतिनिधि हैं। इन पात्रों के माध्यम से लेखक ने सत्ता, शोषण, अन्याय, मानवीय संबंधों की जटिलता, स्त्री-पुरुष असमानता, वर्गीय अंतर्विरोध, नैतिक मूल्यों का संकट और आधुनिकता-परंपरा के संघर्ष जैसे विषयों को उद्घाटित किया है।उनके चर्चित नाटकों रक्तबीज, फांदी, गैरमुल्क के मेहमान,

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ० मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

एक और द्रोणाचार्य, घरौंदा, विक्रमी या सैमुअल आदि पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनके पात्र समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं।उनके पात्रों का सामाजिक आधार उनकी रचनाओं को शक्ति प्रदान करता है और उन्हें हिंदी नाट्य साहित्य की परंपरा में विशिष्ट स्थान दिलाता है। आगामी विवेचन में इन्हीं पात्रों के सामाजिक आधार का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा, जहाँ उनके नाटकों से साक्ष्य लेकर यह समझने का प्रयास होगा कि किस प्रकार शंकर शेष ने अपने पात्रों को समाज की धड़कनों और यथार्थ से जोड़ा।डॉ॰ शंकर शेष के नाटकों में सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण उनके पात्रों के माध्यम से प्रकट होता है। उनके नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि समाज की गहराईयों में निहित समस्याओं, संघर्षों और विरोधाभासों को उजागर करने का सशक्त माध्यम भी हैं। पात्रों की रचना में उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों—निम्नवर्ग, मध्यमवर्ग तथा उच्चवर्ग—की मानसिकता, उनकी जिजीविषा, उनके अंतर्द्वंद्व और उनके सामाजिक दायित्वों को अभिव्यक्ति दी है।

डॉ॰ शंकर शेष की नाट्य दृष्टि मूलतः यथार्थवादी है। उन्होंने जीवन के संघर्षों को नाट्यकला में रूपांतरित करते समय विशेष ध्यान रखा कि पात्र केवल व्यक्तिगत समस्या के वाहक न बनें, बल्कि वे उस वर्ग की व्यथा और आकांक्षा को भी स्वर दें जिससे वे उत्पन्न हुए हैं। यथार्थवादी दृष्टिकोण का यही परिणाम है कि उनके पात्रों के संवाद, उनकी मानसिकता और उनकी क्रियाएँ हमें वास्तविक जीवन से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं।

उदाहरण स्वरूप, उनके नाटकों में चित्रित मजदूर और किसान पात्र केवल अपनी दैन्य अवस्था नहीं दिखाते, बल्कि उस व्यवस्था का भी पर्दाफाश करते हैं जो उन्हें दरिद्र बनाए रखती है। वहीं दूसरी ओर शिक्षित वर्ग और सत्ता-लोलुप पात्र सामाजिक विषमता और नैतिक पतन का चित्रण करते हैं। इस प्रकार डॉ॰ शेष का नाट्य साहित्य सामाजिक संरचना और उसके अन्तर्विरोधों को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है।साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन यह मानता है कि किसी भी रचना के पात्र वर्गीय यथार्थ से कटे नहीं होते। डॉ॰ शेष के नाटक इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उनके पात्र निम्नलिखित वर्गों से पहचाने जा सकते हैं—

1. निम्नवर्ग और श्रमिक पात्र – ये पात्र जीवन-निर्वाह के संघर्ष में उलझे रहते हैं। समाज की शोषण-व्यवस्था इनके दुख-दर्द का मूल कारण है।

2. मध्यमवर्गीय पात्र – यह वर्ग डॉ॰ शेष के नाटकों में विशेष रूप से सक्रिय है। मध्यमवर्ग के अंतर्द्वंद्व, मूल्य-संकट और द्वैध स्थिति को उन्होंने गहराई से चित्रित किया है।

3. सत्ताधारी और उच्चवर्गीय पात्र – समाज में सत्ता और प्रभुत्व रखने वाला वर्ग, जो अपने स्वार्थ के लिए अन्य वर्गों का शोषण करता है, भी उनके नाटकों में उपस्थित है।

4. स्त्री पात्र – डॉ॰ शेष ने स्त्रियों के माध्यम से पारिवारिक और सामाजिक संरचना की विसंगतियों को रेखांकित किया। स्त्रियाँ कभी शोषित रूप में, तो कभी विद्रोहिणी रूप में सामने आती हैं।

इन वर्गीय आधारों पर खड़े पात्र न केवल व्यक्तिगत भावनाओं को व्यक्त करते हैं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को भी उद्घाटित करते हैं।डॉ॰ शंकर शेष के पात्रों में समय-समय की सामाजिक समस्याएँ प्रत्यक्ष रूप से झलकती हैं। बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, असमानता, स्त्री-दमन, राजनीतिक अवसरवादिता और मानवीय मूल्यों का ह्रास—ये सभी विषय उनके पात्रों की पीड़ा और संघर्ष के माध्यम से प्रकट होते हैं। पात्र केवल कहानी को आगे बढ़ाने वाले चरित्र नहीं रहते, बल्कि वे समस्याओं के वाहक और सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता के संकेतक बन जाते हैं।

डॉ॰ शेष के पात्रों के भीतर एक द्वंद्व सदैव सक्रिय रहता है—यथार्थ और आदर्श का। वे परिस्थितियों से विवश होकर यथार्थ को स्वीकार करते हैं, किन्तु भीतर ही भीतर आदर्श और मानवीय मूल्यों की आकांक्षा बनाए रखते हैं। यही द्वंद्व उनके पात्रों को गहनता और जीवंतता प्रदान करता है।डॉ॰ शेष के पात्र मात्र पीड़ित और शोषित होकर नहीं रहते, बल्कि वे विद्रोह और संघर्ष की चेतना से भी ओतप्रोत हैं। वे अन्याय और असमानता के विरुद्ध प्रश्न उठाते हैं। यही चेतना उनके पात्रों को केवल यथार्थवादी ही नहीं, बल्कि परिवर्तनवादी भी बनाती है।डॉ॰ शंकर शेष के नाटकों में चित्रित पात्रों का सामाजिक आधार उनके साहित्य की मौलिक विशेषता है। उनके पात्रों के माध्यम से समाज का यथार्थ, उसकी समस्याएँ और उसकी संभावनाएँ सामने आती हैं। वे हमें यह संदेश देते हैं कि साहित्य और समाज का संबंध अविच्छिन्न है। पात्रों का सामाजिक आधार केवल उनके अस्तित्व की पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि नाट्यकला का जीवंत आधार भी है।

(क) दलित पात्रों का सामाजिक आधार।

हिन्दी नाट्य साहित्य की परंपरा में डॉ॰ शंकर शेष एक ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने समाज की यथार्थपरक समस्याओं को नाट्य मंच पर लाकर न केवल कलात्मक संवेदनशीलता का परिचय दिया, बल्कि समाज-चेतना को भी सक्रिय किया। उनके नाट्य लेखन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे जीवन की विसंगतियों को सीधे और निर्भीकता से अभिव्यक्त करते हैं। डॉ॰ शेष का रचनात्मक आग्रह केवल मध्यमवर्गीय अंतर्द्वंद्व या राजनीतिक अवसरवादिता तक सीमित नहीं है; उन्होंने भारतीय समाज की सबसे बड़ी त्रासदी—जातिगत भेदभाव और दलित जीवन की पीड़ा—को भी अपने नाटकों का महत्त्वपूर्ण विषय बनाया।उनकी दृष्टि में नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज के दर्पण की भाँति वह माध्यम है, जिसके द्वारा यथार्थ को प्रकट कर सामाजिक परिवर्तन की चेतना जगाई जा सकती है। इसी कारण उनके नाटकों में दलित पात्र केवल दीन-हीन या करुणा के पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक संघर्ष और प्रतिरोध की आवाज़ के रूप में उपस्थित होते हैं।

डॉ॰ शंकर शेष तत्कालीन युगीन परिस्थितियों से पूर्णत. परिचित थे। वह भली प्रकार से जानते थे कि जातिवाद, सांप्रदायिकता व छुआछूत आदि की भावना ने हमारे संपूर्ण देश को खोखला कर दिया है। मानव सभ्यता का इतना विकास होने के पश्चात् भी समकालीन युग जातिवाद, छुआछूत, आपसी फूट, अनुशासनहीनता, स्वार्थ, हिंसा व शूद जाति के लोगों का शोषण करना आदि की भावना से मुक्त नहीं हुआ।जाति व्यवस्था के नाम पर होने वाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण डॉ. शेष के 'बाढ़ का पानी' नाटक में पूर्णतः परिलक्षित होता है। इस नाटक का कथ्य समाज में फैली छुआछूत की भावना को उजागर करता है। यह

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ॰ मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

नर्मदा नदी पर बसे एक गाँव की कथा है जिसमे लक्ष्मी, छीतू, गनपत, चंदन, नवल, बटेसर आदि दलित जाति के लोग हैं, जिनका मातादीन, वाकुर एवं पंडित जैसे उच्च जाति के लोगों द्वारा शोपण किया जाता है, उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है। नाटक का पात्र 'गनपत स्वयं अपनी स्थिति बताते हुए कहता है-"हमें गाँव वालों ने दूर टीले पर बसा रखा है गाँव से बिल्कुल दूर, जिससे हमारी छाया भी किसी को छू सके। हमारा चेहरा देखकर किसी की इकादसी और चौथ खराब न हो।"[1]

हमारे समाज में यह मान्यता है कि कोई भी दलित या निम्न जाति के व्यक्ति का मंदिर में प्रवेश करना या पूजा करना वर्जित है। इसी कारणवश जब चमार जाति का नवल' मदिर में पूजा करना चाहता है तो उसके साथ अत्याचार किया जाता है। उसे मंदिर के अंदर प्रवेश नहीं दिया जाता। स्वयं उसकी माँ 'लछमी के संवाद इस बात के सशक्त प्रगाण हैं-"पर इन्हीं गाँव वालों ने तो हमें गाँव से निकाल दिया था पिछले साल। नवल ने कौन सी गलती की थी? अरे भगवान के मंदिर में पूजा ही तो करनी चाही थी। वह कहता था, भगवान सबके हैं, दया के सागर हैं, इसलिए सबसे अधिक हरिजनों के हैं। पर पूरा गाँव हमारे खिलाफ लाठी लेकर खड़ा हो गया था। नवल को बेहद मारा और हमें गाँव से दूर यहाँ बसना पड़ा।"[2]

आज भी सवर्ण जाति के लोग मंदिर पर अपना वर्चस्व स्थापित किए हुए है और मंदिर में शूद्रों का प्रवेश निषेध है। यदि कोई ऐसा प्रयास भी करता है तो उसे कठोर दंड दिया जाता है। 'पंडित' और 'छीतू के संवादों से रपष्ट होता है-"तुम्हारे बेटे ने जो किया धरम का नाश। पच्चीस हरिजनों को लेकर जो भगवान के मंदिर में घुस गया भगवान को छू लिया।"[3]

दुर्भाग्यवश 'नवल' मदिर तक पहुँच भी जाता है तो गाँव में हो रहे प्रलय का भागीदार तथा देवताओं के रुष्ट होने का कारण भी उसे ही माना जाता है। यथा- "नवल के कारण यह बाढ़ आई है। न वह मंदिर में जाता, और न देवता नाराज होते, और न यहबाढ़ आती।"[4]

उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे देश व समाज की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस समकालीन युग में भी जाति पाँति व अस्पृश्यता की भावना अपनी चरम सीमा पर है। दलित व निम्न जाति के लोगों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया जाता है उससे इंसानियत भी शर्मसार होती है, उदाहरणार्थ- "क्या यह इंसानियत पर कलंक नहीं है कि आदमी गधों, घोड़ों और बिल्ली कुत्तों को तो छूने में तो घृणा न करे, पर आदमी को छूने में घिन हो।"[5]

हमारे सभ्य समाज में दलित व निम्न जाति के लोगों का पढना लिखना आज भी निषेध है। उक्त उदाहरण द्रष्टव्य है- "इसलिए तो मैं कहता था, कि इतना मत पढ़ाओ। पढ़ना ठाकुरों का काम है, भौजी! हम चमारों का नहीं। हमारी कुंडली में तो जूते बनाना और जूते खाना ही लिखा है।"[6]

दलित वर्ग भी इस बात से पूर्णतः परिचित है कि उनके शिक्षित होने की बात करना भी अपराधजन्य है। अगर यह गाँव या उच्य जाति के लोगो के हित की बात भी करे, तब भी उसकी कोई नहीं सुनता और उसके साथ अमानवीय व्यवहार ही किया जाता रहा है। जब संपूर्ण गाँव बाढ़ की चपेट में आने लगता है तो 'नवल' सभी लोगों को गाँव खाली कर दो यह रामझाने का प्रयास करता है। गनपत के शब्दों में "आज सुबह से नवल लोगों को समझाने की कोशिश कर रहा है कि नर्मदा का पानी बढ़ेगा.... पर किसी ने उसकी नहीं सुनी। यही बात ऊँची जाति का आदमी कहता तो सब सुनते।"[7]

'नवल' चमार जाति का होने के बाद भी, अत्याचारों को सहने के बावजूद भी ठाकुर व उसकी बेटी कावेरी को बचाने का भरसक प्रयास करता है परंतु फिर भी ठाकुर उरो अपशब्द कहता है और पिटवाता है। उदाहरणार्थ -"ठाकुर यही कहता रहा खबरदार, जो तू घर में घुसा ! गोली मार दूँगा....।

नवल- दद्दा, रग्धू और चंदू ने मुझे मारा है। कहने लगे बाढ़ का फायदा उठाकर तू कावेरी को उड़ा ले जाना चाहता है। "[8]

दलित वर्ग सदैव से ही शोपित रहा है। वह तो केवल अत्याचार सहने हेतु ही पैदा हुआ है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भी उसे संघर्ष करना पड़ता है, उसके लिए अपने व अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी, दो जोड़ी कपडा आदि की व्यवस्था करना भी किसी चुनौती से कम नहीं है। यथा- "साधारण किसान को मजहब, जात-पाँत के झगड़ों के लिए फुरसत कहाँ है? दो जून की रोटी जुटाने में ही उसकी कमर टूट जाती है। ज़हर तो वह लोग फैलाते हैं, जिनके पास पैसा है, फुरसत है और जो लगे दूसरों के बीच झगड़ा पैदा कर अपना उल्लू सीधा करते हैं।"[9]

बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदा के समय में भी उच्च जाति के यह लोग चाहे व गनपत हो, मातादीन, पंडित या फिर ठाकुर ही क्यों न हो, जातीयता, अरपृश्यता, वर्ग संघर्ष आदि से ऊपर नहीं उठ पाते हैं। इसकी नींव घृणा व अंधविश्वास पर टिकी है। जिसका परिणाम यह होता है कि सब खूब मरने के भय से ग्रसित हैं। स्वयं नाटक का नायक 'नवल' उच्चवर्ग के लोगों की गानसिकता का वर्णन करता हुआ कहता है- "अगर इस गाँव में थोड़ा सहयोग होता या सहकारिता की ही भावना होती तो यह मुसीबत आती ही क्यों?"[10]

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने दशक के पश्चात् भी हमारा समाज मध्यकालीन जर्जर रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पाया है, जिसके कारण मनुष्यता का विकास असंभव है। हमारी सामाजिक व्यवस्था का वास्तविक चेहरा इस उद्धरण द्वारा शंकर शेप ने प्रस्तुत किया है- "हमारी पुरानी जाति व्यवस्था एक ऐसा पुराना किला है जो हम में हमेशा एक सुरक्षा का भ्रम पैदा करता रहा है, हम उसी में छिपकर रहना चाहते हैं, पर उसमें हमारे मनुष्यत्व का विकास नहीं होता।.....

इसके लिए हमारी पूरी समाज-रचना जिम्मेदार है। हमारा समाज जन्म से ही कुछ लोगों को धर्म की व्याख्या अपने स्वार्थ के अनुसार करने की छूट देकर अत्याचार करने का अधिकार दे देता है। कुछ लोगों से केवल दबे रहने और दूसरों के अत्याचार सहने की माँग करता है।" [11]

इन अत्याचारों का प्रमुख कारण हमारी सामाजिक अशिक्षा ही नहीं अपितु हमारे समाज के राजनीतिक-सास्कृतिक समूहों पर अशिक्षित, अर्धशिक्षित और सामाजिक रूप से अर्थसभ्य व्यक्तियों का हावी होना है। शंकर शेप ने इस नाटक के माध्यम से समाज में व्याप्त छुआछूत, अस्पृश्यता तथा जात पॉत जैसी कुप्रथाओं से सबधित कई प्रश्न उठाए हैं. साथ ही इस जातीयता, कट्टरता व अधविश्वास जैसी कुप्रवृत्तियो को जड़ से समाप्त करने हेतु कुर्बानी व संघर्ष की अनिवार्यता पर भी बल दिया है। डॉ. शेप दलित वर्ग के साथ हो रहे मतभेदों को समाप्त करने हेतु सड़ी-गली मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रतिरोधी समूहों से टकराव करने की सीख देते हैं उनके अनुसार यह टकराव ही दलित वर्ग के लोगों में चेतना जागृत कर सकता है और यह टकराव

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ० मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

नाटक के नायक 'नवल (जो गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित शिक्षित व मानवीय गुणों से परिपूर्ण संघर्षशील व्यक्ति है) के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नवल के शब्दों में -"पंडित, सदियों की मानसिक गुलामी तोड़ने में बहुत तकलीफ होती है।... गहरी जड़ों वाले अंधविश्वास को मिटाने के लिए कुर्बानी करनी ही पड़ती है, लड़ना पड़ता है।""[12]

नाटक का नायक 'नवल सपूर्ण गाँव के लोगों को बाढ से बचाने हेतु अनेकानेको प्रयास करता है। वह बाढ़ के बहाव के साथ बहना नहीं चाहता है, बल्कि बहाव को मोड़ना चाहता है जिसके लिए वह अथाह संघर्ष करता है। जब उसकी माँ उसे यह सब कुछ छोड शहर जाने को कहती है तो वह स्वयं कहता है- "नहीं माँ, मैं शहर नहीं जाऊँगा। यहाँ मेरी जान चली चली जाए, तो भी नहीं जाऊँगा। मैंने भागना नहीं सीखा है।"[13]

'नवल' का यह कथन उसकी पलायनवादिता नहीं, अपितु संघर्षशीलता को दर्शाता है। ऐसा लगता है मानो नाटककार ने स्वयं 'नवल के माध्यम से अपनी विचार पद्धति को प्रस्तुत किया हो।

'बाढ़ का पानी' नाटक के माध्यम से डॉ. शेप ने छुआछूत, साम्प्रदायिकता, आपसी फूट, स्वार्थ, अनुशासनहीनता, हिसा तथा जातिवाद से परिपूर्ण ऐसी अदृश्य बाढ का वर्णन किया है जो प्राणघातक है और उससे हम चारों ओर से घिरे हुए हैं। नाटक का पात्र बटेसर के शब्द इस अस्पृश्यत्ता की बाढ़ का वर्णन करते हैं, यथा- "चारों ओर मनुष्य मनुष्य को अस्पृश्य समझता है।... मैं कहता हूँ कि यह छूआछूत हमारे देश की छाती पर सबसे बड़ा घाव है। दूसरे लोग घाव का इलाज करते हैं, पर हम उसे पाल रहे हैं। इस बाढ़ ने हमें सबक दिया है। पंडित, एक इससे भी भयानक बाढ़ हमारे देश को घेर रही है, यह है आपसी फूट की! साम्प्रदायिकता की। अनुशासनहीनता की। स्वार्थ की और हिंसा की। यह बाढ़ हमें दिखाई नहीं देती पर हम घिर गए हैं...।"[14]

डॉ. शेष के अनुसार इस विकराल बाढ़ से बचने का मात्र एक ही उपाय है संघर्ष, एकता, समता व सद्भाव।अततः नाटककार ने साकेतिक रूप में समाज से इन सभी कुप्रवृत्तियों को समाप्त करने अर्थात् इस बाढ़ का नाश करने हेतु सकारात्मक शक्तियों को एक जुट कर अहिंसा, सत्यता, सद्भाव, सहयोग व संगठन के टीले का निर्माण किया है। नवल' के अथक प्रयासों के पश्चात नाटक के अंत में उच्च जाति के पडित, ठाकुर स्वय को बचाने के लिए इस भेदभाव को मूल जाते है और दलित जाति के गाँव में शरण ले लेते हैं। 'नवल के शब्द उसकी सफलता की कहानी बखान करते हैं, यथा-"आज मैं बहुत खुश हूँ। हर आदमी अपनी जात भूल रहा है, धरम भूल रहा है, आपस का बैर भूल रहा है, एक ही फिकर है कि वह दूसरे को कैसे बचाए। सब एक साथ खा रहे हैं, एक साथ बैठ रहे हैं। मैं तो चाहता हूँ, चंदा, कि यह बाढ़ हमारे दिलों में जमा हुआ हजारों साल का सब कूड़ा-कचरा बहा दे। इस बाढ़ के साथ ही लोगों के मन से जात-पाँत का बुखार उतर जाए।"[15]

नाटक का सुखद अंत होता है और नाटककार दलित जाति के लोगों के हृदय में एक नए सवेरे व नई बेतना का सवार करता है, उदाहरणार्थ "जिस प्रकार इस टीले पर मृत्यु के भय के कारण धीरे-धीरे एक हो गए, उसी तरह हम सुख में, समृद्धि में, संघर्ष में भी एक रहें। यह टीला चंदन का दीप बने।"[16]

इस दलित साहित्य में नाटकों का भी विशेष महत्व है। समकालीन दलित साहित्य आज नई ऊँचाइयों को छू रहा है तथा इसमें पुरानी रूढ़ियों को बदलने की क्षमता है। आज दलित वर्ग में एक नयी चेतना का उदय हुआ है और दलितों ने अपने अधिकारों के प्रति सघर्ष करना प्रारंभ कर दिया है। सदियों से शोषण को सहता हुआ आज दलित वर्ग अपनी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान हेतु संघर्षरत हैं।

डॉ. शंकर शेष दलित नाटककार तो नहीं थे परतु उनके नाटको में सामाजिक कुप्रवृत्तियों का पुरजोर विरोध हुआ है। उन्होंने अपने 'बाढ़ का पानी' नाटक के माध्यम से दलित वर्ग के लोगों में संघर्ष चेतना का संचार किया तथा सद्भाव व एकता के बल पर, अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए संपूर्ण समाज में परिवर्तन कर एक नए समाज की स्थापना की।

पंडित का यह कथन उल्लेखनीय है— "तुम्हारे बेटे ने जो किया धर्म का नाश... पच्चीस हरिजनों को लेकर मंदिर में घुस गया।"[17]

यह संवाद स्पष्ट करता है कि दलित पात्र धार्मिक और सामाजिक समानता की माँग करते हैं, जबकि परंपरा और रूढ़िवादिता उन्हें रोकने के लिए कटिबद्ध है। यहाँ छीतू और उसके बेटे का साहस दलित अस्मिता की प्रतीकात्मक विजय है।

पोस्टर नाटक में शंकर शेष ने श्रमिक और दलित जीवन की समस्याओं को साथ जोड़ा है। पोस्टर चिपकाने वाले मजदूर केवल आर्थिक शोषण के शिकार नहीं हैं, बल्कि उन्हें सामाजिक असमानता और पहचान के संकट से भी जूझना पड़ता है।एक पात्र का कथन यहाँ अत्यंत मार्मिक है— "पोस्टर तो हर दीवार पर चिपक जाता है, पर हमारी पुकार कौन सुनता है? हम भी आदमी हैं, पर हमें आदमी कौन मानता है?" [18]

यह संवाद इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि दलित जीवन में समस्या केवल जीविका या श्रम की नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और सामाजिक पहचान की भी है।

रक्तबीज नाटक में सामूहिक चेतना और विद्रोह का स्वर मुखर है। इसमें जनता की व्यापक पीड़ा और शोषण के साथ-साथ दलित जीवन की त्रासदी भी झलकती है। पात्र का यह कथन उल्लेखनीय है— "हमारी पीढ़ियाँ खून-पसीना बहाती रहीं, पर पेट खाली ही रहा। दूसरों के लिए अन्न उगाया, पर अपने लिए भूख बची रही।"[19]

यह संवाद न केवल किसानों और मजदूरों की दशा का चित्रण करता है, बल्कि दलित जीवन की उस करुण सच्चाई को भी प्रकट करता है, जिसमें श्रम तो उनका है परंतु फल दूसरों को भोगना पड़ता है। यहाँ दलित पात्र सामूहिक संघर्ष का हिस्सा बनकर शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं।

इस नाटक में डॉ॰ शंकर शेष ने शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त असमानता और जातिगत पूर्वाग्रह को उजागर किया। प्रतिभा और योग्यता के बावजूद दलित पात्र अवसरों से वंचित रहते हैं। एक पात्र का संवाद इस भेदभाव को स्पष्ट करता है— "प्रतिभा तो सबमें होती है, पर तुम्हारी जात हमारी किताबों में दर्ज नहीं... इसलिए तुम्हारा हक़ नहीं।"[20]

यहाँ शिक्षा, जो समानता और प्रगति का माध्यम होनी चाहिए, वही जातिगत असमानता को बनाए रखने का उपकरण बन जाती है। इस प्रकार शंकर शेष ने दलित पात्रों के माध्यम से सामाजिक संरचना की गहरी विसंगति का उद्घाटन किया।शंकर शेष के नाटकों में दलित पात्रों का चित्रण एक नए सामाजिक विमर्श की नींव रखता है।पात्रों की भाषा, जीवन-स्थितियाँ और समस्याएँ पूर्णत: वास्तविक और जीवंत

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ॰ मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

हैं।पात्र केवल शोषित या करुणा के पात्र नहीं, बल्कि वे अन्याय और असमानता के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर भी हैं। संवादों के माध्यम से वे पूरे समाज से प्रश्न पूछते हैं, जिससे उनका चरित्र व्यक्तिगत सीमा से ऊपर उठकर सामूहिक चेतना का प्रतीक बन जाता है।आलोचक नामवर सिंह का मत है— "शंकर शेष ने नाटक में दलित पात्रों को सहानुभूति का पात्र न बनाकर प्रतिरोध की आवाज दिया है। यही उनकी विशेषता है।" [21]

डॉ॰ शंकर शेष के नाटकों में दलित पात्र समाज की जटिलताओं और विसंगतियों के सशक्त प्रतिनिधि हैं। बाढ़ का पानी में मंदिर प्रवेश का संघर्ष, पोस्टर में पहचान की खोज, रक्तबीज में सामूहिक विद्रोह और एक और द्रोणाचार्य में शिक्षा की असमानता—ये सभी उदाहरण सिद्ध करते हैं कि शंकर शेष ने दलित जीवन की वास्तविक समस्याओं को कलात्मक और वैचारिक दोनों स्तरों पर सामने रखा।उनकी दृष्टि दलितों को केवल शोषण का शिकार दिखाने की नहीं, बल्कि उन्हें संघर्ष और परिवर्तन का वाहक बनाने की है। इस प्रकार शंकर शेष हिन्दी नाटक में दलित विमर्श के अग्रणी रचनाकार सिद्ध होते हैं।

(ख) स्त्री पात्रों का सामाजिक आधार।

साहित्य की अनेक विधाओं में नाटक को सबसे अधिक सामाजिक और जीवंत विधा माना गया है। यह मनुष्य और समाज की वास्तविकता का दर्पण है। नाटक में जीवन और जगत् का प्रत्यक्ष अनुभव संभव है। इसलिए यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि मानवीय अनुभूतियों का प्रामाणिक और रचनात्मक रूप भी है। नाटक की संरचना इस दृष्टि से विशिष्ट है कि वह मनुष्य के जीवन की उलझनों और समस्याओं को सामने लाकर हमें सोचने पर मजबूर करता है। यही कारण है कि पूर्व और पश्चिम के नाट्य-चिंतक एक स्वर में इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटक जीवन के सार्थक अनुभवों का कलात्मक रूप है। विश्व के कालजयी नाटकों ने इसे बार-बार सिद्ध किया है।

समय के साथ भारतीय समाज में निरंतर परिवर्तन आया। आधुनिकता ने जीवन को और अधिक जटिल और चिंतन को व्यापक बनाया। इस बदलते परिदृश्य में नाटक का स्वरूप भी बदल गया। जहाँ पहले आदर्श और संतुलन प्रमुख हुआ करते थे, वहीं अब मनुष्य की समस्याएँ, तनाव और द्वंद्व नाटक के केंद्र में आ गए। डॉ. शंकर शेष के नाटक इसी परिवर्तन के जीवंत प्रमाण हैं। उन्होंने स्वतंत्रता-उत्तर भारतीय समाज की असंगतियों और कटु यथार्थ को अपने पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया।उनके नाटकों में भूखमरी, भ्रष्टाचार, महँगाई, बेरोज़गारी और गरीबी जैसे यथार्थ सामने आते हैं। समाज में फैलती अपसंस्कृति और मानवीय संबंधों की जटिलता को भी उन्होंने गहराई से चित्रित किया। शंकर शेष का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उनके पात्र केवल निराशा और पीड़ा में डूबे नहीं रहते, बल्कि संघर्ष करते हैं और जीवन की समस्याओं से जूझते हुए समाधान भी तलाशते हैं।

उनके नाटकों में स्त्री पात्रों की जीवन-स्थितियाँ विशेष रूप से उभरती हैं। स्त्रियों के संघर्ष, त्याग, पीड़ा और आत्मबल उनके नाटकों की प्रमुख विशेषता हैं। वे स्त्री को केवल शोषित और पराजित रूप में नहीं दिखाते, बल्कि उसे जुझारू और जीवन संघर्ष में डटी हुई नायिका के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं।

रत्नगर्भा - डॉ. शंकर शेष का नाटक "रत्नगर्भा" हिंदी नाट्य-साहित्य में सामाजिक और प्रतीकात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। शीर्षक ही अपने आप में गहरी अर्थवत्ता लिए है—"रत्नगर्भा" अर्थात वह भूमि या गर्भ जिसमें अनगिनत रत्न छिपे हैं। यहाँ "रत्न" केवल भौतिक संपदा नहीं, बल्कि मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक धरोहर और समाज की सामूहिक चेतना के प्रतीक हैं। शंकर शेष इस नाटक के माध्यम से यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या यह "रत्नगर्भा" समाज के सभी वर्गों के लिए खुला है, या फिर केवल सत्ता और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ही इसकी चमक का लाभ उठाते हैं।

नाटक की कथा-संरचना प्रतीकात्मक है। इसमें भूमि को रत्नगर्भा के रूप में देखा गया है, जो अपार संपदा से भरी हुई है। लेकिन इस संपदा पर अधिकार करने का संघर्ष ही कहानी का केंद्रीय बिंदु बन जाता है। सत्ता-प्रतिष्ठान इस रत्नगर्भा को अपने नियंत्रण में लेना चाहता है ताकि वह अपनी ताकत और प्रभुत्व को और सुदृढ़ कर सके। दूसरी ओर, सामान्य जनता—जो परिश्रम और संघर्ष से जीवन जीती है—इस संपदा से वंचित रह जाती है।

नाटक में पात्रों के माध्यम से शंकर शेष ने वर्ग-संघर्ष और शोषण की समस्या को उभारा है। सत्ता के लोग भूमि की संपदा को अपने अधिकार में लेने के लिए हर प्रकार का छल, प्रपंच और हिंसा करते हैं। वे इसे "सभ्यता की प्रगति" और "समाज के उत्थान" का नाम देते हैं। किंतु वास्तविकता यह है कि उनकी मंशा केवल निजी वैभव और स्वार्थ से प्रेरित होती है। इस संदर्भ में "रत्नगर्भा" केवल प्राकृतिक संपदा का प्रतीक नहीं रह जाती, बल्कि वह सत्ता, लालच और सामाजिक असमानता का भी प्रतीक बन जाती है।

नाटक में स्त्री-पात्रों की उपस्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। स्त्री यहाँ दो स्तरों पर चित्रित होती है—एक ओर वह स्वयं रत्नगर्भा (धरती) की तरह जीवनदायिनी और पोषक है, दूसरी ओर उसी का शोषण और दोहन किया जाता है। शंकर शेष इस द्वंद्व को गहरे रूप में पकड़ते हैं। स्त्री की अस्मिता को समाज अक्सर सत्ता और स्वार्थ की "रत्नगर्भा" समझकर प्रयोग करता है, किंतु उसकी आत्मा और चेतना को नज़रअंदाज़ कर देता है।

नाटक का संदेश स्पष्ट है—यदि रत्नगर्भा का दोहन केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग करेंगे, तो समाज में असमानता, शोषण और हिंसा बढ़ेगी। वास्तविक समृद्धि तभी संभव है जब रत्नगर्भा में छिपे मूल्य और संसाधन समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध हों। "रत्नगर्भा" की विशेषता यह है कि यह नाटक केवल आर्थिक असमानता की चर्चा नहीं करता, बल्कि वह नैतिक प्रश्न भी उठाता है—क्या संपदा केवल भौतिक रत्नों में है, या सच्चे रत्न समाज की एकता, न्याय और मानवीय संवेदनाओं में छिपे हैं? शंकर शेष का उत्तर स्पष्ट है—यदि समाज मानवीय मूल्यों को खो देता है, तो कोई भी रत्नगर्भा उसे वास्तविक सुख और शांति नहीं दे सकती।

"रत्नगर्भा" नाटक समाज के वर्ग-संघर्ष, सत्ता-लालसा और नैतिक मूल्यों के संकट को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। यह नाटक हमें यह सोचने पर विवश करता है कि असली रत्न कौन-से हैं—धरती की गोद में छिपे खनिज और वैभव, या फिर मनुष्य के भीतर बसे न्याय, समानता और मानवीय संवेदनाएँ। इस नाटक की नायिका इला का संघर्ष स्त्री-जीवन की कटु सच्चाइयों को उजागर करता है। विवाह के पश्चात् एक दुर्घटना में उसका चेहरा कुरूप हो जाता है। पति सुनील, जो सौंदर्य को ही परम मूल्य मानता है, उससे घृणा करने लगता है। वह

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ॰ मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कहता है –"मैंने सौंदर्य को अलौकिक शक्ति माना है, पर आज आकाश मुझ पर ही टूट पड़ा।"[22]
सुनील यह भूल जाता है कि यदि सौंदर्य एक सत्य है तो कुरूपता भी उतना ही बड़ा सत्य है। इला की कुरूपता उसके जीवन का अभिशाप बन जाती है और पति उस पर अत्याचार करने लगता है। अंततः वह इला को उसकी संपत्ति के लिए मार डालने को तैयार हो जाता है। यह जानकर इला कहती है –"लाओ मुझे दो ज़हर... यदि मेरी मौत से तुम्हें सुख मिलता है तो मेरा गला घोंट दो।"[23]
यहाँ इला जीवन के प्रति गहरा प्रेम रखने के बावजूद पराजित और निराश दिखाई देती है। परंतु उसका यह संघर्ष यह भी बताता है कि स्त्री केवल सौंदर्य की वस्तु नहीं है; उसमें आत्मबल और संवेदना भी उतनी ही गहरी होती है।

बिन बाती के दीप- डॉ. शंकर शेष का नाटक "बिन बाती के दीप" समाज की गहरी विडंबनाओं का दर्पण है। शीर्षक में ही छिपा प्रतीक यह संकेत करता है कि दीप तो मौजूद है, किंतु जब उसमें बाती नहीं है, तब वह केवल खोखला दीप बनकर रह जाता है। यह प्रतीक सीधे-सीधे समाज की उस स्थिति का रूपक है जहाँ मनुष्य जीवन तो जीता है, किंतु उसके भीतर नैतिकता, सहारा और संवेदनाएँ अनुपस्थित हो जाती हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो यह नाटक न केवल व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा का आख्यान है, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक विवशता का सजीव मंचन है।
सबसे पहले यदि हम स्त्री के संदर्भ में देखें तो नाटक यह स्पष्ट करता है कि स्त्री का जीवन समाज में दीप की तरह है—वह जीवनदायिनी है, पोषण करने वाली है और परिवार को जोड़ने वाली है। किंतु जब उसके हिस्से में सम्मान और अधिकार नहीं आते, तो उसकी स्थिति "बिन बाती का दीप" जैसी हो जाती है। स्त्री अपनी संपूर्ण क्षमता के बावजूद केवल अंधकार में जलने को विवश रहती है। नाटक में स्त्री पात्रों की पीड़ा महज निजी संघर्ष नहीं है, बल्कि पूरे समाज की उस सोच का उद्घाटन है जो स्त्री को केवल सहनशीलता और बलिदान के प्रतीक के रूप में देखती है। यहाँ शंकर शेष ने स्त्री की उपेक्षित स्थिति को गहराई से रेखांकित किया है।
सत्ता का प्रश्न भी इस नाटक में उतना ही महत्वपूर्ण है। सत्ता की संरचनाएँ समाज के लिए बाती का कार्य करती हैं। यदि सत्ता ईमानदार और नैतिक हो, तो वह दीप को जलाने वाली बाती का काम करती है और समाज को प्रकाश देती है। किंतु जब सत्ता भ्रष्टाचार, अन्याय और शोषण में डूब जाती है, तब वह स्वयं ही बाती को नष्ट कर देती है। नाटक में यह स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है—सामान्य व्यक्ति संघर्ष कर रहा है, उसका दीप बुझा-बुझा सा है, और सत्ता उसकी मदद करने की बजाय केवल उसे और अंधकार में धकेल रही है। इस प्रकार "बिन बाती के दीप" सत्ता की विफलताओं का तीखा प्रतिरोध भी है।
संस्कृति के परिप्रेक्ष्य से यह नाटक समाज के मूल्यों के पतन की ओर संकेत करता है। संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती है, वही समाज को प्रकाश प्रदान करती है। किंतु जब संस्कृति केवल औपचारिकता या प्रदर्शन का साधन बन जाए, जब उसमें नैतिकता और मानवीय संवेदनाएँ समाप्त हो जाएँ, तब उसका स्वरूप भी "बिन बाती के दीप" जैसा हो जाता है। शंकर शेष ने इस नाटक के माध्यम से यह प्रश्न उठाया कि क्या केवल परंपरा और बाहरी आडंबर संस्कृति की पहचान है, या फिर सच्ची संस्कृति वह है जो समाज के हर वर्ग को प्रकाश और समानता प्रदान करे।
इस नाटक का समाजशास्त्रीय महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह हमें बार-बार सोचने पर विवश करता है कि दीप जलाने के लिए केवल दीपक होना पर्याप्त नहीं है, उसे बाती चाहिए। उसी प्रकार समाज को केवल ढांचा नहीं, बल्कि मानवीयता और न्याय चाहिए। यदि यह अनुपस्थित है, तो समाज केवल खोखला ढांचा रह जाता है। "बिन बाती के दीप" इस विडंबना का ऐसा चित्र है जिसमें आम आदमी के संघर्ष, स्त्री की पीड़ा, सत्ता की विफलता और संस्कृति की खोखली चमक—सब एक साथ सामने आते हैं।"बिन बाती के दीप" डॉ. शंकर शेष का वह नाटक है जो समाज को उसकी अपनी वास्तविकता का आईना दिखाता है। इसमें स्त्री का बलिदान, सत्ता का अन्याय और संस्कृति की खोखली परंपरा—ये सभी मिलकर एक ऐसे अंधकार का चित्र खींचते हैं जहाँ दीप तो है पर उसमें बाती नहीं है। यह नाटक केवल बीसवीं सदी के भारत की स्थिति नहीं दर्शाता, बल्कि आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी समाज में वह प्रकाश अनुपस्थित है जो सबको समानता, न्याय और गरिमा प्रदान कर सके। इस प्रकार यह नाटक न केवल साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान है, बल्कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी एक गहन और चेतनाप्रद दस्तावेज़ है।
यह नाटक स्त्री-पुरुष संबंधों में महत्वाकांक्षा और विश्वासघात की समस्या को चित्रित करता है। विशाखा और शिवराज इस नाटक के केंद्रीय पात्र हैं। विशाखा एक प्रतिभावान लेखिका है पर दुर्घटना में उसकी आँखों की रोशनी चली जाती है। उसका लेखन समाज की गहरी समस्याओं को उजागर करता है। महत्वाकांक्षी शिवराज उसकी रचनाओं को अपने नाम से प्रकाशित करवा कर साहित्य-जगत में नाम कमा लेता है।इतना ही नहीं, वह विशाखा की आँखों में ऐसी दवा डालता रहता है जिससे उसकी आँखें कभी ठीक न हों। वह अपनी टाइपिस्ट मंजू से कहता है –"विश्वास रखो, मंजू। विशाखा कभी ठीक नहीं होगी। तीन साल से हम जो दवा डाल रहे हैं, उससे वह हमेशा अंधी ही रहेगी।"[24]
अंततः जब विशाखा को यह सच्चाई मालूम होती है तो वह पीड़ा से भर जाती है, लेकिन पति से अलग होने का निर्णय नहीं करती। वह कहती है –"तुम मुझ अंधी से प्रेम कर सके तो क्या मैं तुम्हारा अपराध क्षमा नहीं कर सकती?"[25]
इस संवाद में स्त्री की सहनशीलता, क्षमा और त्याग की भावना प्रकट होती है। यहाँ शंकर शेष ने दिखाया है कि स्त्री अपने टूटे हुए संसार को भी सकारात्मक दृष्टि से सँभालने का प्रयास करती है। डॉ. शंकर शेष का नाटक "बिन बाती के दीप" समाज की गहरी त्रासदियों और मानवीय विडंबनाओं का प्रतीकात्मक चित्र है। शीर्षक में निहित रूपक यह सिखाता है कि दीप का अस्तित्व तभी सार्थक है जब उसमें बाती हो, और समाज का जीवन तभी पूर्ण है जब उसमें मानवीय मूल्य, न्याय और संवेदनाएँ जीवित हों। इस नाटक में स्त्री की पीड़ा, सत्ता की विफलता और संस्कृति की खोखली परंपराएँ एक साथ उजागर होती हैं।शंकर शेष यह स्पष्ट कर देते हैं कि यदि सत्ता और समाज साधारण मनुष्य को सहारा नहीं देंगे, यदि स्त्रियों को केवल त्याग और बलिदान की वस्तु माना जाएगा, और यदि संस्कृति केवल आडंबर और प्रदर्शन में सिमट जाएगी, तो समाज का दीप कभी प्रज्वलित नहीं होगा। वह सदा "बिन बाती" ही रह जाएगा।इस दृष्टि से "बिन बाती के दीप" केवल एक नाटक नहीं, बल्कि एक सामाजिक चेतावनी है। यह हमें अपने

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ० मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

भीतर झाँकने पर विवश करता है और कहता है कि सच्चा प्रकाश तभी संभव है जब समाज अपने हर व्यक्ति को गरिमा, समानता और अवसर दे। यही इस नाटक की स्थायी प्रासंगिकता है और यही डॉ. शंकर शेष की नाट्य-दृष्टि की विशेषता।

मूर्तिकार- "मूर्तिकार" उनका एक ऐसा नाटक है जिसमें कला, कलाकार और समाज के द्वंद्व को बड़ी गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। शीर्षक स्वयं बताता है कि केंद्र में "मूर्तिकार" है—वह शिल्पकार जो पत्थर को आकार देता है और उसमें प्राण फूँककर उसे जीवंत बना देता है। किंतु यह नाटक केवल शिल्प की कला का उत्सव नहीं है, बल्कि समाज के उस विरोधाभास का चित्रण है जहाँ कलाकार स्वयं उपेक्षा और शोषण का शिकार होता है।

डॉ. शंकर शेष का यह नाटक स्पष्ट करता है कि समाज में कला और कलाकार की स्थिति कितनी जटिल है। कलाकार समाज को सौंदर्य और सांस्कृतिक गौरव प्रदान करता है, किंतु वही समाज कलाकार को गरीबी, असुरक्षा और उपेक्षा का जीवन जीने के लिए विवश करता है।

नाटक की कथा एक मूर्तिकार और उसके जीवन-संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमती है। मूर्तिकार वह व्यक्ति है जो दिन-रात पत्थर को तराशता है, उसमें नई आकृतियाँ गढ़ता है और अपनी कला के माध्यम से समाज को सांस्कृतिक धरोहर देता है। उसकी मूर्तियाँ केवल पत्थर की आकृतियाँ नहीं होतीं, बल्कि उनमें उसकी आत्मा, संवेदना और श्रम झलकता है।

किंतु यही मूर्तिकार समाज की दारुण सच्चाई से जूझता है। उसकी कला को तो लोग सराहते हैं, उसकी मूर्तियों की पूजा करते हैं, उन्हें मंदिरों और राजमहलों में स्थापित करते हैं, किंतु उस कलाकार का जीवन दारिद्य और संघर्ष में बीतता है। यह द्वंद्व ही नाटक की आत्मा है।

मूर्तिकार के परिवार का चित्रण भी अत्यंत मार्मिक है। उसकी पत्नी और बच्चे उसके संघर्ष में सहभागी हैं, किंतु वे भी उसी गरीबी और अभाव का जीवन जीते हैं। समाज कलाकार की रचनाओं को तो अमरत्व देता है, परंतु कलाकार स्वयं गुमनामी और उपेक्षा में जीता और मरता है। यही विडंबना "मूर्तिकार" के हर दृश्य में प्रतिध्वनित होती है।"मूर्तिकार" में शंकर शेष ने कई सशक्त प्रतीकों का प्रयोग किया है।

मूर्तिकार : सृजनशील कलाकार का प्रतीक, जो समाज के लिए जीता है, पर स्वयं उपेक्षित है।

पत्थर : कठोर समाज का प्रतीक, जिसे तराशने के लिए कलाकार अपना खून-पसीना बहाता है।

मूर्ति : कला और संस्कृति का प्रतीक, जिसे समाज पूजता है।

गरीबी : कलाकार की वास्तविक नियति, जो उसकी प्रतिभा के बावजूद उसका पीछा नहीं छोड़ती।

इन प्रतीकों के माध्यम से शंकर शेष यह दिखाते हैं कि समाज कलाकार की रचनाओं को तो अमरत्व देता है, किंतु कलाकार को जीवन भर संघर्ष में धकेल देता है।नाटक का सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि कलाकार और समाज का आपसी संबंध कैसा होना चाहिए। समाज कलाकार से सृजन की अपेक्षा करता है, पर उसके श्रम और जीवन की चिंता नहीं करता। मूर्तिकार समाज को सांस्कृतिक पूंजी देता है, पर उसे लौटाने के नाम पर समाज केवल उपेक्षा और भूख देता है।

मूर्तिकार गरीब वर्ग से आता है। उसकी प्रतिभा अद्वितीय है, किंतु उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। दूसरी ओर, राजपरिवार, मंदिर और धनी लोग उसकी मूर्तियों का उपयोग अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए करते हैं। यह वर्ग-संघर्ष नाटक की पृष्ठभूमि में निरंतर मौजूद रहता है। नाटक यह स्पष्ट करता है कि सत्ता-संरचना कला का उपयोग अपने वैभव और शक्ति के प्रदर्शन के लिए करती है। मूर्तियाँ मंदिरों और राजमहलों में प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाती हैं। परंतु उस कला के सर्जक को कोई महत्व नहीं मिलता। सत्ता केवल कलाकार की कृति को मान्यता देती है, कलाकार को नहीं।मूर्तिकार की पत्नी का चरित्र समाज में स्त्री की भूमिका को भी उजागर करता है। वह गरीबी और संघर्ष में पति का साथ देती है, परिवार को संभालती है और कठिनाइयों के बावजूद धैर्य बनाए रखती है। उसकी स्थिति स्वयं इस विडंबना का प्रतीक है कि कला और संस्कृति के गौरव के बीच परिवार और स्त्रियाँ सबसे अधिक कष्ट झेलती हैं।मूर्तियाँ समाज की सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा बन जाती हैं। वे कालजयी होती हैं और पीढ़ियों तक समाज को गौरव देती हैं। परंतु प्रश्न यह है कि यदि कलाकार का जीवन ही उपेक्षित रहा, तो क्या यह संस्कृति वास्तव में जीवंत और मानवीय कही जा सकती है? शंकर शेष इस नाटक में यही प्रश्न उठाते हैं कि संस्कृति का मूल्य तभी है जब वह कलाकार और श्रमिक को सम्मान दे।

नाटक का यथार्थ यह है कि भारतीय समाज में कलाकारों, विशेषकर शिल्पकारों की स्थिति हमेशा कठिन रही है। वे समाज के लिए काम करते हैं, परंतु समाज उन्हें उचित सम्मान और साधन नहीं देता। इस यथार्थ को शंकर शेष ने प्रतीकों के माध्यम से अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। मूर्तिकार का चरित्र वास्तविक समाज की उस पूरी परंपरा का प्रतिनिधि है जिसमें कलाकार अपनी कला से दूसरों को अमर बना देता है, पर स्वयं गुमनाम रह जाता है।डॉ. शंकर शेष का नाटक "मूर्तिकार" केवल एक कलाकार की कथा नहीं है, बल्कि यह पूरे समाज की मानसिकता का उद्घाटन है। यह नाटक स्पष्ट करता है कि यदि समाज कलाकार की रचनाओं को ही पूजता रहेगा और कलाकार को उपेक्षा में जीने देगा, तो वह समाज कभी वास्तविक संस्कृति का निर्माण नहीं कर सकेगा।यह नाटक आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आधुनिक समाज में भी कलाकार अक्सर आर्थिक संकट और उपेक्षा से गुजरते हैं, जबकि उनकी रचनाएँ अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सराही जाती हैं। "मूर्तिकार" हमें यह सोचने पर विवश करता है कि क्या हम केवल कला को सम्मान देंगे, या कलाकार को भी वह गरिमा देंगे जिसका वह वास्तविक अधिकारी है।

इस प्रकार "मूर्तिकार" शंकर शेष की नाट्य-दृष्टि का प्रतिनिधि नाटक है, जिसमें प्रतीकात्मकता, यथार्थ और समाजशास्त्रीय दृष्टि का अद्भुत संगम मिलता है। यह नाटक न केवल साहित्यिक महत्व का है, बल्कि सामाजिक चेतना का दस्तावेज़ भी है। यह नाटक आधुनिक मध्यमवर्गीय परिवारों की आर्थिक समस्या पर केंद्रित है। शेखर एक प्रतिभाशाली लेकिन आदर्शवादी मूर्तिकार है। अपने सिद्धांतों के कारण वह गरीबी झेलता है। उसकी पत्नी ललिता गृहस्थी की कठिनाइयों और भूख-प्यास की चिंता में हमेशा डूबी रहती है।ललिता चाहती है कि शेखर अपने आदर्शों को त्यागकर व्यावहारिक बने, ताकि आर्थिक स्थिति सुधर सके। परंतु शेखर कलाकार से व्यापारी नहीं बनना

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ० मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

चाहता। जब मकान-मालिक का मुंशी ललिता को खरीदने की कोशिश करता है तो ललिता दृढ़ता से कहती है –"दुनिया भर का सारा सोना इकट्ठा कर लो, पर ललिता का नख तक नहीं छू सकोगे।"[26]

यह संवाद भारतीय स्त्री के आत्मसम्मान और गरिमा का सशक्त उदाहरण है। वह गरीबी में टूटती है पर बिकती नहीं। शंकर शेष के नाटकों में जीवन की समस्याओं का गहन चित्रण है। उनके पात्र जीवन की विषम परिस्थितियों से हारते नहीं, बल्कि संघर्ष करते हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों में सौंदर्य बनाम कुरूपता, महत्वाकांक्षा बनाम विश्वासघात और आदर्श बनाम आर्थिक दबाव जैसे प्रश्नों को उन्होंने गहराई से उभारा है।महादेवी वर्मा का कथन यहाँ बिल्कुल सार्थक प्रतीत होता है – "समाज ने स्त्री के संबंध में अर्थ का ऐसा विभाजन किया है कि श्रमजीवी से लेकर संपन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही लगती है।"[27]

शंकर शेष ने इसी वास्तविकता को अपने नाटकों में मूर्त रूप दिया है।डॉ. शंकर शेष के नाटक समकालीन भारतीय समाज की समस्याओं और स्त्री-जीवन की सच्चाइयों का जीवंत दस्तावेज़ हैं। इनमें स्त्री की पीड़ा, संघर्ष और त्याग के साथ-साथ उसकी अदम्य जिजीविषा का भी चित्रण हुआ है। वे केवल समस्या नहीं दिखाते बल्कि समाधान की ओर भी संकेत करते हैं। यही कारण है कि उनके नाटक आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी भारतीय नाट्य साहित्य की अमूल्य धरोहर बने रहेंगे।डॉ. शंकर शेष का सम्पूर्ण नाट्य-साहित्य सामाजिक यथार्थ का सशक्त दर्पण है। विशेषकर उनके नाटकों में स्त्री पात्रों की उपस्थिति केवल भावनात्मक सज्जा या पारंपरिक गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे भारतीय समाज की विडंबनाओं, असमानताओं और संघर्षों को उद्घाटित करने वाली सक्रिय चेतना के रूप में सामने आती हैं। शंकर शेष ने अपने लेखन से यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री समाज की मात्र परिधि नहीं, बल्कि उसकी केंद्रस्थ शक्ति है।उनके नाटक "रक्तबीज", "कोमल गंधार" और "मूर्तिकार" में स्त्रियाँ विविध रूपों में उपस्थित हैं—कभी अपमानित और शोषित, कभी संघर्षशील और विद्रोही, कभी कोमल हृदय की संवेदनशील प्रतीक और कभी कलाकार की प्रेरक शक्ति। ये सभी स्त्रियाँ अलग-अलग रूपों में समाज की उस जमीनी सच्चाई को सामने लाती हैं, जहाँ पितृसत्तात्मक ढाँचे ने उन्हें दबाया, किन्तु वे मौन रहने वाली नहीं थीं।

निष्कर्ष

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि शंकर शेष ने अपने नाटकों में स्त्रियों को केवल सहायक या गौण स्थान नहीं दिया, बल्कि उन्हें संघर्ष, चेतना, विद्रोह और परिवर्तन का वाहक बनाया। उनके स्त्री पात्र आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं क्योंकि वे भारतीय समाज के यथार्थ और स्त्री-स्थिति की गहरी पड़ताल करते हैं।

संदर्भ सूची

1. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.56.
2. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.59.
3. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.61.
4. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.78.
5. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.56.
6. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.60.
7. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.61.
8. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.64.
9. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.6.
10. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.85.
11. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.60.
12. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.89.
13. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.69.
14. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.90.
15. सिंह ए.एन. दलित साहित्य समकालीन परिदृश्य.
16. शेष श. बाढ़ का पानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 1972. पृ.45.
17. शेष श. पोस्टर. दिल्ली: भारतीय नाट्य मंच प्रकाशन; 1976. पृ.32.
18. शेष श. रक्तबीज. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन; 1974. पृ.61.
19. शेष श. एक और द्रोणाचार्य. दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1978. पृ.27.
20. सिंह न. हिन्दी नाटक और समाज. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन; 1980. पृ.144.
21. कुकरेती ह, शेष श. समग्र नाटक भाग 2: बाढ़ का पानी. पृ.85.
22. शेष श. समग्र नाटक भाग 1: रक्तगर्भा. पृ.54.
23. शेष श. समग्र नाटक भाग 1: रक्तगर्भा. पृ.91.
24. शेष श. समग्र नाटक भाग 1: बिन बाती के दीप. पृ.128.
25. शेष श. समग्र नाटक भाग 1: बिन बाती के दीप. पृ.141.
26. शेष श. समग्र नाटक भाग 3: मूर्तिकार. पृ.45.
27. शर्मा न. आधे भारत का संघर्ष. पृ.175.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 धनंजय कुमार महतो, डॉ० मीरा कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/